International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.882, Volume 05, No. 04(III), October - December, 2023, pp. 194-201

विरोध के विचार का विश्लेषणात्मक पक्ष

Dr. Manoj Kumar Bhari*

शोध पत्र सार

विरोध का विचार बहुआयामी है, जिसमें अनुभूति, असहमति और असहयोग शामिल है। यह दबाव या बाहरी शक्ति का सक्रिय रूप से जवाब देता है, जिसका उद्देश्य ऐसे प्रभावों को कम करना या समाप्त करना है। असहमति, स्थापित प्राधिकरण के साथ सहयोग करने से इनकार करना, आलोचनात्मक सोच और सहिष्णुता से निकटता से जुड़ा हुआ है, जो राज्य की कार्रवाइयों और सामाजिक रीति–रिवाजों की वैधता का आकलन करने के लिए आवश्यक प्रभावी सार्वजनिक तर्क को बढ़ावा देता है। प्लेटो और कांट से लेकर जॉन स्टुअर्ट मिल, मिशेल फौकॉल्ट और फ्रैंकफर्ट स्कूल के विचारकों ने राजनीतिक वैधता को आकार देने में असहमति की भूमिका पर जोर दिया। हेगेलियन आदर्शवाद, हॉब्स और लॉक के सिद्धांत, अराजकतावादी विचार और मार्क्सवादी आलोचनाओं ने राज्य की वैधता पर विचारों को प्रभावित किया है। जबकि ग्रीन ने सार्वजनिक हित में कानूनों का पालन करने के कर्तव्य पर जोर दिया, थोरो, डॉ. पट्टाभि सीतारमैया और सेंट ऑगस्टीन ने अन्यायपूर्ण कानूनों का विरोध करने की नैतिक अनिवार्यता पर प्रकाश डाला। लॉक और मार्क्स ने खराब शासन के खिलाफ क्रांतिकारी विरोध का समर्थन किया, जबकि लास्की ने सरकारी औचित्य को लोकप्रिय सहमति से जोड़ा। ग्रीन ने तर्क दिया कि सरकारी आदेशों का पालन करना नैतिक विकास को बढ़ावा देता है, लेकिन अगर राज्य इसकी अवहेलना करता है तो नागरिकों को अवज्ञा करनी चाहिए। बर्ट्रेंड रसेल ने चेतावनी दी कि कानून नागरिक स्वतंत्रता में बाधा डाल सकते हैं, अराजकता से बचने के लिए उनकी तार्किक स्वीकृति की वकालत करते हैं। भारतीय स्वतंत्रता में, अरबिंदो घोष ने अवज्ञा को आत्म–विकास से जोड़ा, यह कहते हुए कि सच्चे आत्म–विकास के लिए विदेशी शासन से स्वतंत्रता की आवश्यकता होती है। 19वीं शताब्दी में निरंकुशता के खिलाफ बढ़ते विरोध को देखा गया, जो नैतिक और राजनीतिक शक्ति विरोध में विभाजित था। सुकरात, थोरो, एक्विनास, टॉल्स्टॉय और गांधी जैसे विचारकों ने विरोध में नैतिक तर्क पर जोर दिया। लास्की और मार्टिन लूथर किंग, जूनियर ने अन्यायपूर्ण कानूनों पर नैतिक कर्तव्य को प्राथमिकता दी। नेल्सन मंडेला और बाल गंगाधर तिलक ने अनैतिक कानूनों को चुनौती देने पर जोर दिया, जबकि अरबिंदो ने प्रणालीगत परिवर्तन के लिए संगठित विरोध की वकालत की। विरोध, संक्षेप में, नैतिक चेतना और न्याय द्वारा संचालित स्वतंत्रता और अधिकारों को सुरक्षित करने के लिए शक्ति को अस्वीकार और चुनौती देता है। आलोचनात्मक विचार और नैतिक जिम्मेदारी की परंपरा में निहित, विरोध व्यक्तियों को असहनीय असमानताओं को चुनौती देने के लिए सशक्त बनाता है। गॉडविन, कामू और सोरेल जैसे विचारकों ने अन्यायपूर्ण सत्ता के विरुद्ध अहिंसक प्रतिरोध पर जोर दिया, तथा न्याय और स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए प्रत्येक का दृष्टिकोण अद्वितीय था।

बीज शब्द–*असहमति, विरोधात्मक अनुभूति, उद्देश्यात्मक अभिव्यक्ति, अहिंसक निवेदन, अराजकतावादी, अस्तित्ववाद*

* Associate Professor, Department of Political Science,Government Girls College, Vidhyadhar Nagar, Jaipur, Rajasthan, India.

विरोध अनुभूति, असहमति और असहयोग के विविध रूपों में रूपायित होती है। शब्दकोषीय परिभाषाओं के अनुसार– ''विरोध एक ऐसी क्रिया है चाहे वह निष्क्रिय हो या सक्रिय जो किसी दबाव या बाहरी शक्ति के समक्ष समर्पित नहीं होती। यह एक ऐसी शक्ति क्रिया के रूप में कार्य करती है जिसका लक्ष्य दूसरी शक्ति को समाप्त करना या उसके प्रभाव को कम करना है। विरोध–अनुभूति एक ऐसी जिज्ञासा–अनुभूति है जिसमें बेचैनी, तैयारी, तत्परता और चेतना की क्रियाशीलता है। यह क्रियाशीलता एस.पी.गौतम के शब्दों में आशय, निर्णय और क्रिया के रूप में अपनी स्थापना करती है।[1] राज्य सम्प्रभुता की प्रभावी और उत्तेजनात्मक भूमिका के कारण स्वीकार और कभी–कभी अस्वीकार भी होता है। यह अस्वीकार्य मानसिकता सहमति और नकारने की स्पष्टता के कारण विरोध की, संघर्ष की सम्भावनाओं को व्यवस्थित करती है।

असहमति, सत्ता के स्थापित स्रोत के साथ सहयोग करने की अनिच्छा है, जिसका स्वरुप सामाजिक, सांस्कृतिक या सरकारी हो सकता है। यह अक्सर दो अन्य अवधारणाओं, आलोचनात्मक सोच और सहनशीलता से संबंधित होती है, दोनों ही राजनीतिक वैधता की समस्या में भूमिका निभाते हैं। यह मुख्य रूप से आलोचनात्मक सोच की गतिविधि, या स्वयं के लिए सोचने और अधिकार, सत्य और अर्थ की स्वीकृत धारणाओं पर सवाल उठाने से जुड़ी है। यह प्रभावी सार्वजनिक तर्क विकसित करने के लिए एक शक्तिशाली स्रोत है, जो किसी दिए गए राज्य के कार्यों और संस्थाओं के साथ–साथ किसी दिए गए समाज के रीति–रिवाजों और प्रथाओं की वैधता निर्धारित करने के लिए आवश्यक है। प्लेटो और कांट के लिए, असहमति या तो व्यक्तियों की दूसरों के संबंध में अपने जीवन की जांच करने की क्षमता या सार्वजनिक तर्क के लिए सामूहिक क्षमता को बढ़ावा देने के लिए महत्वपूर्ण थी। हालाँकि, असहमति केवल इतनी दूर तक ही जा सकती है। हाल के विचारकों – चाहे वे जॉन स्टुअर्ट मिल जैसे 19वीं सदी के उदारवादी हों या मिशेल फौकॉल्ट जैसे 20वीं सदी के उदारवाद के आलोचक या फ्रैंकफर्ट स्कूल के सदस्य – ने असहमति को एक महत्वपूर्ण अच्छाई माना, जिसकी 19वीं और 20वीं सदी के लोकतंत्रों में सापेक्ष अनुपस्थिति उन राज्यों को प्रभावित करने वाली अस्वस्थता के मूल में चली गई। असहमति का सहिष्णुता से संबंध बड़े समूहों में अल्पसंख्यक समूहों की भूमिका को शामिल करता है, जिनके व्यवहार को अक्सर बड़े समूह के अन्य सदस्यों द्वारा उस समूह के मानदंडों से असहमति के रूप में देखा जाता है।[2]

राज्य की हीगलवादी आदर्शमूलक धारणाएँ, हॉब्स, लॉक और रूसो के निरकुंश राजतन्त्र, सीमित–राजतन्त्र और लोकतन्त्र के परिवेश में अभिव्यक्त भावनाएँ, अराजकतावादी चिन्तन में राज्य को नकारने की प्रवृत्ति, मार्क्स के चिन्तन में उसके वर्गीय चरित्र की समीक्षा राज्य को कभी विराटता प्रदान करती है और कभी लघुता। आदिम युग से आधुनिक युग तक राज्य चाहे धर्म की जकड़न में रहा हो अथवा मार्क्सवादी प्रभाव के कारण धर्म निरपेक्ष बोध की गहनताओं में आप्लावित रहा हो, आधुनिक युग की व्यवस्थाएँ लोकतन्त्र और तानाशाही में स्थापित हो गई हैं। निरकुंश राजतन्त्र और सैनिक शासन तन्त्र भी इन्हीं व्यवस्थाओं के आसपास

घूमता है। इस दृष्टि से सहयोगात्मक अथवा विरोधात्मक अनुभूति और राजनैतिक क्रियाशीलता का आधार राजसत्ता का चरित्र होता है।

ग्रीन ने कानूनों की अच्छाई और बुराइयों को अनदेखा करते हुए सार्वजनिक हित में उनका पालन करना नागरिक का कर्तव्य बताया है। ग्रीन के अनुसार– ''किसी वर्ग और व्यक्ति के हितों को स्थापित करने वाले कानून, यदि बुरे हों तथा समुदायों के हितों के विरोधी हों तब भी सामान्य नियम के रूप में, निःसन्देह उनका पालन किया जाना चाहिए। कानूनों की अवज्ञा करने का नागरिकों को कोई अधिकार नहीं है।''[3] ग्रीन ने इस बाध्यता के बाद भी सहमति बिन्दु को उसी आधार तक स्वीकार किया है, कि उससे सामान्य स्वतन्त्रता का अहित न हो।[4]

थोरो ने न्याय की व्यवस्थाओं को विरोध भावना से जोड़ने का प्रयास किया है, थोरो के चिन्तन में कानून के प्रति सद्भाव की अभिव्यक्ति मिलती है लेकिन वह भी एक अत्याचारी शासन को स्वीकार करने और उससे असहमत होने के अधिकार को स्वीकार करता है।[5]

थोरो ने जिस अवज्ञा भावना को उचित और अनुचित के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया, उस भावना को विरोध की आधार भूमि के रूप में देखा जाना चाहिए। शोषण की सभी सीमाएँ जब सीमातीत हो जाएँ और व्यक्ति एक बेचैनी भरी घुटन में दम तोड़ने के लिए विवश हो जाए तब –'' एक भ्रष्ट सरकार और तन्त्र के प्रति निष्ठावान रहना पाप है और अनिष्ठा एक गुण है।''[6] इस भावना को डॉ. पट्टाभि सीतारमैया ने इन शब्दों में प्रभावी ढंग से इस प्रकार कहा है –''तुम प्रशासन को, उसके आदेशों और निर्देशों का पालन करके प्रभावी ढंग से सहयोग दो, एक कुप्रशासन इस तरह की निष्ठा का पात्र नहीं है। इस निष्ठा का अर्थ है–पाप में सहभागी होना, इसलिए एक अच्छा व्यक्ति अपनी सम्पूर्ण आत्मशक्ति के साथ इस अनुचित प्रशासन का विरोध करेगा। ऐसे अनुचित राज्य के कानूनों की अवज्ञा करना कर्तव्य बन जाता है।''[7] इस दृष्टि से शोषण करने वाले राज्य को और अत्याचार स्थापित करने वाले राज्य की आज्ञाओं को नकारना व्यक्ति का पुनीत कर्तव्य बन जाता है।

सेण्ट ऑगस्टाइन ने सत्ता के प्रति आदर की अभिव्यक्ति का आधार तो स्थापित किया है, लेकिन वह भी सेण्ट थॉमस एक्वीनास[9] की तरह सत्ता को उचित और अनुचित की अवधारणा से जोड़ते हैं और यह उचित–अनुचित की अवधारणा उन्हें विरोध को अधिकार से अधिक कर्तव्य उद्बोधित करने की प्रेरणा देती है। लॉक ने एक बुरी सरकार के विरुद्ध विरोध की आवश्यकता को कर्तव्य [10] के रूप में परिभाषित किया है। 19वीं शताब्दी में मार्क्स ने विरोध के क्रान्तिकारी स्वरूप को स्थापित करके क्रान्तिकारी अवधारणा को बल प्रदान किया।[11] लास्की ने सरकार के औचित्य को लोकप्रिय सहमति से अनुबन्धित किया है। लास्की अल्पसंख्यकों को ही नहीं बल्कि अकेले व्यक्ति को भी असहनीय असमानताओं के विरुद्ध विद्रोह का अधिकार देता है।[12] ग्रीन ने सरकार के आदेशों का नैतिक आधार पर पालन करने की अपेक्षा की है। व्यक्ति का यह एक नैतिक कर्तव्य है, कि वह कानून का पालन करे, इससे उसका नैतिक विकास होगा, राजनीति को सदैव नैतिक परिप्रेक्ष्य में स्वीकार किया जाना चाहिए।[13] भावना के विपरीत भी यदि राज्य मनुष्य के नैतिक विकास की तरफ अनदेखी करता है, तब नागरिक का यह कर्तव्य बन जाता है कि वह राज्य के आदेशों की अवज्ञा करे। बर्ट्रेण्ड रसेल ने कानूनों को

नागरिक स्वतन्त्रता के विरुद्ध प्रभावी अनुभव किया है। वह कानूनों की एक तार्किक आधार पर स्वीकारोक्ति का आग्रह करता है, क्योंकि इस अवज्ञा का अर्थ अराजकता होता है।[14] कानून के स्थिर स्वरूप से स्वतन्त्रता की उन्मुक्त प्रवृत्ति इसलिए बाधित होती है, क्योंकि यह व्यक्ति से हल करने की सुविधा और अधिकार छीन लेता है। नौकरशाही स्वतन्त्रता के लिए एक चुनौती बन जाती है।[15] वह व्यक्ति उद्देश्यों के आधार पर विरोध अथवा विद्रोह को अस्वीकार करता है, लेकिन सामाजिक हित के परिप्रेक्ष्य में वह इस नैतिक मानता है।[16] अरविन्द घोष ने भारतीय स्वतन्त्रता के परिप्रेक्ष्य में अवज्ञा की धारणा की आत्मविकास और आत्म सहायता की अनुभूति से जोड़ते हुए कहा है –''एक स्वतन्त्र राष्ट्र का स्व–विकास एक अलग चीज है तथा एक विदेशी शासन के अन्तर्गत स्व–विकास दूसरी चीज है। उस निरंकुश शासन को शान्तिपूर्वक या शक्ति के आधार पर हटाए बिना स्व–विकास की कल्पना करना सम्भव नहीं है। राज शक्ति के बिना किसी भी राज्य का विकास सम्भव नहीं है।[17] 19 वीं शताब्दी में निरंकुश तन्त्र के विरुद्ध विरोध और दबाव अधिक से अधिक उजागर हुए। इस प्रवृत्ति के अवरिल प्रवाह में दो दृष्टिकोण प्रभावी दिखाई देते हैं :–

अ. नीति और नैतिकता के आधार पर विरोध। ब. राजनैतिक सत्ता को पदच्युत करने के आधार पर जन्मे विरोध। पहले विरोध की छाया में सुकरात, थोरो, एक्वीनास, टॉलस्टाय और गाँधी के विरोध को रखने की सहजता दिखाई देती है, जिसमें उचित और अनुचित का आधार है, इसमें तर्क और आत्मा के सिद्धान्तों को प्राथमिकता मिलती है। लास्की इसी परिप्रेक्ष्य में यह उद्घोषित करता है –''हमारा प्रथम कर्तव्य हमारी आत्मा के प्रति है, हम राज्य को सही कार्य करने के लिए दबाव दे सकते हैं यही हमारा प्रथम कर्तव्य है।''[18]

मार्टिन लूथर किंग ऐसे किसी भी कानून को स्वीकार करने की सहमति नहीं देते, जो अनैतिक हों और ईश्वरीय कानूनों के विरुद्ध जाते हों।[19] इसी सद्भावना को नेल्सन मण्डेला ने भी 1962 में बन्दी बनाए जाने से पूर्व अभिव्यक्त करते हुए कहा था–'जो कानून हम पर लागू किया जाता है, वह हमारी दृष्टि में अनैतिक, अनुचित और असहनीय है। हमें इसे बदलने का प्रयास करना चाहिए, एक नागरिक के नाते कानून पालन करने की बोध भावना से हम परिचित हैं। हम वही कहते हैं, जो हमें उचित लगता है और इस उचित भावना की पूर्ति हम आत्मा के अनुरूप करते हैं।''[20] स्वतन्त्रता को नैसर्गिक अधिकार मानते हुए बाल गंगाधर तिलक ने कहा था कि स्वतन्त्रता मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है और मैं इसे प्राप्त करके रहूँगा। इस भावना की अभिव्यक्ति श्री अरबिन्दो के विचारों में इस प्रकार होती है.....स्वतन्त्रता एक राष्ट्र की जीवनी शक्ति है और जब इस जीवनी शक्ति पर आक्रमण होता है, इसे हिंसात्मक दबाव से अवरुद्ध किया जाता है, तब आत्मरक्षार्थ किया गया कोई भी कार्य उचित और न्यायसंगत बन जाता है। ....हिंसा के लिए हिंसा का सिद्धान्त अपरिहार्य भी होता है और न्यायसंगत भी।[21] यह सन्दर्भ रूस और आयरलैण्ड के सम्बन्ध में उन्होंने दिया, लेकिन गाँधी भी स्वतन्त्रता के परिप्रेक्ष्य में स्वतन्त्रता से कम किसी बात को स्वीकार नहीं करते –''हम या तो भारत को स्वतन्त्र करेंगे या इस प्रयास में मर जाएँगे।[22] इस सम्पूर्ण धारणा से विरोध स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए, अधिकार प्राप्ति के लिए, उन सभी बाधाओं को दूर करने और सत्ता प्रतिबन्धों को प्रभावहीन करने की क्रिया है, जो व्यक्ति के नैसर्गिक विकास में अवरोध पैदा करती है। यह अवरोध ही विरोध की प्रेरक शक्ति है।

अरविन्द ने इसे निम्नवत् परिभाषित किया है–'' संगठित विरोध वर्तमान सरकार के विरुद्ध राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए अथवा एक रूप से दूसरे रूप की सरकार को स्थानापन्न करने के लिए अथवा वर्तमान व्यवस्था में सम्पूर्ण आंशिक परिवर्तन के लिए अथवा आपत्तिजनक विशेष व्यवस्था के बदलाव के लिए अथवा किसी विशेष असन्तोष को समाप्त करने के लिए अपनाई गई प्रक्रिया है।[23] विरोध का स्वरूप कैसा भी हो, लेकिन बर्ट्रेण्ड रसल के शब्दों में –''यह असहमति, विरोध और सत्ता से विरोध करने की उस स्थिति का नाम है, जिसमें सत्ता चाहे परम्पराओं से, धर्म से अथवा कानून से निर्मित हो।''[24]

बर्ट्रेण्ड रसल ने विरोध की अधिकार की अबाधित स्थिति को स्वीकार नहीं किया है, लेकिन वह स्वतन्त्रता के परिप्रेक्ष्य में विरोधाधिकार को अपरिहार्य अधिकार मानते हैं तथा इसे नैतिक चेतना की शक्ति भी मानते हैं। गाँधी इसे उचित और अनुचित कानून के परिप्रेक्ष्य में उचित के लिए, अनुचित को नकारने की बोधगम्यता को स्थापित करते हैं। गाँधी के अनुसार –''अनुचित कानूनों को अस्वीकार करने में, उनका विरोध करने में न पाप है और न अन्याय, जिस समय मनुष्य अन्याय की अनुभूति करता है, उस समय राजनैतिक व्यवस्था काँपने लगती है।[25] ऑल्डस हक्सले ने इसी धारणा के अनुरूप राज्य को मनुष्यों के लिए, न कि मनुष्यों को राज्य के लिए अपरिहार्य बताया है। विरोध का रूप स्वरूप कैसा भी हो, उसकी भावाभिव्यक्ति में निम्नलिखित सम्बोधन स्थापित अनुभव होते हैं–

- विरोध सत्ता के अनैतिक कानूनों को स्वीकार न करने की चेतना है।
- विरोध सत्ता के प्रति शोषण के विरुद्ध समर्पण न करने की चेतना है।
- विरोध सत्ता को उसी प्रकार चुनौती देने, जिस प्रकार इससे चुनौती मिल रही है, की विद्रोहात्मक चेतना है।
- विरोध चुनौती, चेतावनी और संघर्ष की उस अवधारणा का नाम है, जिसमें राजनीति एक न्याय सम्मत समाज की रचना की सम्भावना खोजती है।
- विरोध अवज्ञा की उस चेतना का नाम है, जिसमें वह अधिकार भी है, और कर्तव्य भी।
- विरोध अधिकारों और स्वतन्त्रताके नकारे जाने पर शोषणकर्त्री राजसत्ता के विरुद्ध टकराहट की सीमा से आगे बढ़ने की चेष्टा का नाम है।
- विरोध आदर्शों और मूल्य की स्थापनार्थ एक निष्ठावान क्रिया है।

पश्चिमी राजनैतिक सिद्धान्त विरोध के चिन्तन में भरपूर है। विलियम गोडविन हेनरी डेविड थोरो, एलवस्ट कम्मस, जार्ज शोरेल इत्यादि कुछ ऐसे विचारक हैं जिन्होंने इस विषय में बड़ा योगदान दिया है।[26] ब्रिटेन के प्रसिद्ध अराजकतावादी विचारक विलियम गोडविन के अनुसार व्यक्ति उनके उच्चतर अधिकारियों, प्रथाओं तथा संस्थाओं द्वारा निर्धारित मानदण्डों को मानने के लिए पूर्णतः बाध्य नहीं है, गोडविन स्वीकार करते हैं कि जब इस प्रकार की परिस्थिति सामने आती है तब व्यक्ति को उपयोगिता की जाँच के सिद्धान्त को लागू करने की

आवश्यकता पड़ती है। जब राज्य अपने निर्धारित कर्तव्यों की सीमाओं का उल्लंघन करता है व व्यक्तियों के पूर्ण विकास व सद्गुणी बनने में बाधा पहुँचाता है तो ऐसी परिस्थिति में गोडविन नागरिकों के विरोध अधिकार को मान्यता देता है। गोडविन यह स्वीकार करते हैं कि ऐसे विरोध में क्रांतिकारी साधनों का प्रयोग न करें क्योंकि इसका सम्बन्ध सत्य से है। गोडविन ने विवेकपूर्ण समझाने के तरीके से ही सही माना है क्योंकि इससे सत्य का विकास होता है और यह समाज में व्यापक रूप से फैलती है, अन्ततः यही राज्य को अपने बुरे तरीकों को त्यागने के लिए बाध्य करती है।

विरोध के सिद्धान्तकार विरोध के सिद्धान्त में एकमत नहीं हैं। अस्तितत्ववाद के प्रमुख विचारक अल्वेयर कामू थे। जिन्होंने सामान्यतः मानव जीवन व विशेषतया संघर्षरत विश्व में आने वाली उलझनों पर प्रकाश डाला। उन्होंने इन उलझनों का विरोध करने की वकालत की व व्यक्ति के लिए विरोध के नये युग की शुरूआत करके ये माना कि अर्थहीन संसार में इसी के माध्यम से अपना अस्तित्व कायम रखा जा सकता है। आध्यात्मिक स्तर पर यह विरोध मृत्यु के खिलाफ व सांसरिक स्तर पर उन सभी शक्तियों के खिलाफ है जो मनुष्य की महत्ता, स्वतन्त्रता व प्रसन्नता को या तो कम करना चाहती हैं या समाप्त करना चाहती हैं। कामू के अनुसार मानवता के विरूद्ध अन्याय व शोषण के जारी रहने के लिए कोई न्यायोचित आधार नहीं है कोई भी सत्ता चाहे राज्य हो जब यह निर्दयी, धूर्त व विनाशकारी हो जाती है तो इसका विरोध किया जाना चाहिए। कामू कहते हैं कि आदर्श विरोधी वह होता है जो अपने विश्वास से अन्यायपूर्ण आदेशों का पालन करने से इन्कार देता है। विरोध अपने इस विरोध के द्वारा पवित्र व अबाध्य मूल्यों के प्रति अपनी आस्था व्यक्त करता है। वह अपने आचरण में नैतिक मूल्यों की वास्तविकता को सार्थक करता है। यद्यपि कामू अन्यायपूर्ण सत्ता के विरोध के लिए क्रान्तिकारी व हिंसक साधनों को उचित नहीं समझता, उन्होंने अनैतिक क्रान्ति व उदासीन अनैतिक चुप्पी दोनों ही अतियों से बचने के लिए संयम या मध्यम मार्ग की वकालत की है। अन्याय व अन्याय कर्ता में विभेद करते हुए उसने अन्यायकर्ता के निरन्तर अस्तित्व की आवश्यकता पर बल दिया ताकि उसका शुद्धिकरण या उसमें कुछ सुधार किया जा सके। इस प्रकार कामू ने विरोध विनाश के स्थान पर अहिंसक निवेदन व प्रार्थना को मान्यता दी दूसरे प्रमुख विचारक फ्रांस के जॉर्ज सोरेल थे। जिन्होंने विरोध के एक नये सिद्धान्त को प्रतिपादित किया। प्रारम्भ में वे मार्क्सवादी थे लेकिन बाद में सुधारवादी बन गये। उन्होंने यह माना कि आधुनिक राज्य के सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक व्यवस्था में हिंसा छिपी हुई है, ऐसे राज्य में विवेकपूर्ण विचार–विमर्श व समझ से शांति के समस्त दावे व प्रयास खोखले हो जाते हैं क्योंकि राज्य का बुर्जुआ वर्ग अपने शोषणकारी प्रवृत्ति को छिपाये रखता है व अपने विशेषाधिकारों के विरुद्ध राज्य व्यवस्था में हिंसा की प्रवृत्ति अन्तनिर्हित है व उसका समाधान करने में विवेक की क्षमता में सोरेल का विश्वास नहीं है। सोरेल व्यवहारवादी राजनीति में विवेकहीनता के समर्थक हैं। सोरेल ने पूँजीवाद की शोषक प्रवृत्तियों से मुक्त एक नई व्यवस्था का सृजन किया जिसमें श्रमिकों की इस इच्छा शक्ति में निहित मानता है कि हिंसा व संघर्ष के माध्यम से इसकी स्थापना कर सकते हैं।

सोरेल यह मानता है कि वर्तमान बुर्जुआ व्यवस्था में कोई भी सूझ–बूझ से इसकी अन्यायपूर्ण व शोषक व्यवस्था से मुक्त नहीं हो सके इसलिए हिंसात्मक तरीके इस व्यवस्था से मुक्ति के लिए जरूरी है। श्रमिक वर्ग

द्वारा हिंसक उपायों के प्रयोग से संघर्ष में लिप्त दोनों पक्षों में अन्तर्निहित कुछ दैवीय भावनाओं को जागृत करते हैं जो अन्ततः एक न्यायपूर्ण व्यवस्था की स्थापना करने में सहायक होती है। श्रमिक वर्ग को प्रेरित करने के लिए सोरेल अन्धविश्वास व बुद्धिहीनता को आवश्यक मानते हैं इन गुणों से ही श्रमिक वर्ग राज्य की शोषण व्यवस्था व संस्थाओं को नष्ट कर सकता है। इसी सन्दर्भ में ही सोरेल ने सामान्य हड़ताल की अवधारणा का प्रतिपादन किया। सामान्य हड़ताल में अन्तर्निहित हिंसा को वे पवित्र समझते हैं क्योंकि इसका प्रयोग संकीर्ण लक्ष्यों के लिए नहीं किया जाता जैसे कि कुछ अन्य लोग करते हैं। वे इस हिंसा को शान्तिपूर्ण तरीकों से जिनसे की समाज में मतभेदों को दूर किया जाता है उसे उच्चकोटि का मानते हैं क्योंकि इसमें रचनात्मक शक्ति व पवित्रता अन्तर्निहित सोरेल का विरोध का सिद्धान्त पीड़ित व शोषित लोगों के आक्रामक व साहसी कार्य को आदर्श के रूप में परिलक्षित करता है व यह मानता है कि शोषित समाज के शोषकों से मुक्ति ऐसे ही साधनों से सम्भव है।

सारतः विरोध की अनुभूति अस्तित्व को स्वीकारे जाने, अहम् के स्वीकारे जाने, स्वार्थ की पूर्ति हेतु कभी अन्याय के विरुद्ध बेचैन रहने और कभी स्वतन्त्रताओं और अधिकारों की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील, अनुभूति है। यह शोषण से मुक्ति के लिए, न्याय सम्मत समाज की रचना के लिए, अवरोधों को निष्प्रभावी करने के लिए एक ऐसी गतिशील, शाश्वत, उत्पादक, सुधारात्मक, प्रतिबन्धात्मक उद्देश्यात्मक अभिव्यक्ति है, जिसके माध्यम से व्यक्ति समाज में अपनी स्थापना खोजता और बनाता है।

सन्दर्भ

1. सत्य पी. गौतम, रीजन्स फॉर एक्शन, पृ. 41–53
2. https://www.britannica.com/topic/dissent-political
3. टी.एच. ग्रीन : लेक्चर्स ऑन द प्रिंसिपल्स ऑफ पॉलिटिकल आब्लीगेशन्स, पृ. 150
4. वही, पृ. 152–53
5. राघवन अय्यर : द मारल एण्ड पॉलिटिकल थॉट ऑफ महात्मा गांधी, पृ. 266 पर उद्धृत
6. पट्टाभि सीतारमैया : द हिस्ट्री ऑफ द इण्डियन नेशनल कांग्रेस, पृ. 659
7. वही।
8. गांधी–सत्याग्रह, पृ. 65–77
9. एस्बजोर्न आइड (लेख वाइलेशन ऑफ ह्यूमन राइट. (स), पृ. 34–38 में उद्धृत।
10. वही।
11. वही।
12. विलियम एबन्सटीन : मॉडर्न पॉलिटिकल थॉट, पृ.129–30.
13. ए.डी. लिण्डसे (भूमिका) लेक्चर्स ऑन द प्रिंसिपल्स ऑफ पॉलिटिकल आब्लिगेशन्स.
14. बर्ट्रेण्ड रसेल : ह्यूमन सोसायटी इन इथिक्स एण्ड पॉलिटिक्स, पृ. 36
15. बर्ट्रेण्ड रसेल : पॉवर, पृ. 191
16. वही, पृ. 170.
17. अरविन्द घोष : वन्दे मातरम्, पृ. 85.
18. डॉ. एस.ए. बारी : गांधीजी डॉक्ट्रइन ऑफ सिविल रेजिसटेन्स, पृ. 141 पर उदृधृत।

19. वही, पृ. 142.
20. वही, पृ. 142–43
21. श्री अरविन्दो : वन्दे मारतरम् भाग 1 पृ. 98
22. एम.के. गांधी (लेख) 'फ्रीडम : द बेसिक क्वेश्चन', डेमोक्रेसी इन इण्डिया, पृ. 113.
23. श्री अरविन्दो : वन्दे मारतरम्, भाग 1 पृ. 90.
24. बर्ट्रेण्ड रसेल : ह्यूमन सोसायटी इन इथिक्स एण्ड पॉलिटिक्स, पृ. 129
25. यंग इण्डिया, 24 मार्च, 1920.
26. द मोस्ट सेलिबेरेटिड वर्क ऑफ सिविल डिस्ओबिडिएन्स : एन रिफोर्म पेपर्स प्रिंसअन यूनिवर्सिटी प्रेस प्रिंसटन न्यूटर्सी 1973.

□○□